

परिदृश्य के भीतर

रचनाकार : कुमार मुकुल

प्रकाशक: रश्मिप्रिया प्रकाशन
वर्ष: 2000
भाषा: हिन्दी
विषय: कविताएँ

सोमालिया / कुमार मुकुल

मुट्ठी भर

अन्न के लिए

गोलियाँ

मुट्ठी भर

और सभ्यता के कगार पर

आ पहुँचे हम।

(रचनाकाल : 1994)

कउआ / कुमार मुकुल

रोटी का
एक तिरपटांग टुकडा
मुंह में लिए हुए
अपनी क्षैतिज उडान
उडा जा रहा है कउआ
उसकी खुशी देख लगता है
कि वह हितोपदेश या पंचतंत्र की
कथाओं से निकलकर
भागा जा रहा है
कउए को शायद नहीं पता
कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने
कितना खाद्य-अखाद्य बना डाला है
संस्कृतियों के रंगीन टीलों को छोड
गंगा की ओर मुंह किए
कहां भागा जा रहा है कउआ
क्या किसी बाल-गोपाल की चीख
अब भी उसका पीछा कर रही है ?

1996

चौकियाँ / कुमार मुकुल

जब खच्चरों और गदहों पर
अँटी नहीं होगी
खानाबदोश जिन्दगी
थोडा और सभ्य
थोडा और जड होने की
जब जरूरत महसूस हुई होगी
तब मस्तिष्क के तहखानों से
बैलगाडियों के साथ-साथ
निकली होंगी चौकियाँ भी

शायद उस काल भी थे देवता
जो चलते थे पुष्पकों से
या मंत्रों से
जो आज भी जा रहे हैं
चॉद और मंगल की ओर
तब से चली आ रही हैं बैलगाडियाँ भी
सभ्यता का बोझ ढोतीं

जब बी-29 पर लदे परमाणु अस्त्र
हिरोशिमा पर
सभ्यता का भार हल्का कर रहे थे
एक घुमक्कड खच्चरों पर अपनी सभ्यता लादे
तिब्बत से लद्दाख का रास्ता तलाश रहा था
उसी समय
कलकत्ते में लोग
चौकियों पर चौकियां जमा रहे थे
चॉद की ओर जाने का
यही ढंग था उनका।

पुतैये / कुमार मुकुल

रात भीगना था ओस में

जिन चूल्हों को

सुबह पुतना था

मिटटी-गोबर-पानी और धूप से

पुत गये वे अपनों ही के खून से

पुतैये आये थे रात

जमात में

यूं चरमराया तो था बॉस की चॉचर का दरवाजा

प्रतिरोध किया था जस्ते के लोटे ने

ढनमनाया था जोर से

चूल्हे पर पडा काला तावा भी

खडका था

नीचे गिरते हुए

पर बहादुर थे पुतैये

बोलती बंद कर दी सबकी

चूल्हे की तरह मुँह बा दिया सबने

चूल्हे की राख में घुसी

सोयी थी बिल्ली जो

मारी गयी

पिल्ले भी मारे गये

सोये पुआल पर।

हिटलर चित्रकार भी था और ब्रेख्त उसे व्यंग्य से पुतैया यानी पोतने वाला कहते थे। यह कविता बिहार के नरसंहारों के संदर्भ में है।

साधु न चले जमात / कुमार मुकुल

ऊँटों पर अन्न की बोरियां लादे
जमात में आए हैं साधु
आओ बेटा देखो ठूंट साधु देखो
संकटापन्न प्रजाति है यह
बिहू-बिरहोरों सी
चीते और लायगर की तरह
गायब हो जाएंगे ये भी

एअर इंडिया के प्रतीकों में
जैसे शेष हैं महाराजा
रानियां म्यूजियमों में
यूं ही साधु भी रह जाएंगे स्मृतियों में हमारी

नगर का संकट दूर करने
आये हैं साधु
संकट रह जाएंगे ज्यों के त्यों
और गायब हो जाएंगे साधु
यज्ञ से उठते धुएं की तरह

पहले रक्षा करते थे राम-लक्ष्मण यज्ञों की
आज राम-लक्ष्मण की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए
यज्ञ कर रहे साधु
साधु जो पहले रह लेते थे जंगलों में
जहां आज रह रहे हैं उग्रवादी
वहां से बहरा गए हैं साधु
और घूम रहे हैं नगरों में जट्ट के जट्ट।

1966

मर्यादाएँ हम तोड़ेंगे / कुमार मुकुल

तीन-चार आत्महत्याओं
व हजारों हत्याओं के बाद
एक कब्रगाह में
जन्म ले रहे हैं रामलला
और बधावा
नहीं बज रहा इस बार
विधवाएं
सरापा जरूर भेज रही हैं

बधावा बजता ही
तो क्या होता राम
अयोध्या वनवास ही देती तुम्हे
फिर सीता बिन सूनी रसोई में
उसकी सोने की मूर्ति देख कितने दिन जीते

अब तो वन भी नहीं रहे
कंकरीट के इस जंगल में कहां मिलेंगे वाल्मीकि
तब लव-कुश को जन्म दिये बगैर ही
मर जाएगी सीता
पर तुम्हे क्या
स्त्री के कष्ट से तो टूटती नहीं हैं तुम्हारी मर्यादाएं
पुरोहित नियंत्रित राजसत्ताएं ही
तोड पाती हैं उसे
शबदी के जूठे बेर खाने वाले के हाथों
शम्बूक वध का आदेश पारित कराकर

अब तो ना शूद्र हैं ना ही ऋषि
बस राजेनता हैं

पर ना होंगे लव-कुश तो क्या
हम भी तो तुम्हारे बेटे हैं राम हम तोडेंगे मर्यादाएं
ग्रसेंगे हम
बंदरों-भालुओं से अंटी अयोध्या को
पीटेंगे बांधकर
इसी कंकरीट के जंगल में ।
1996

मुन्नन पढ़ रहा है / कुमार मुकुल

सुबह के छह बज रहे हैं और कुहरा नहीं है आज
कांसे की थाली सा मंदप्रभ सूर्य
ऊपर आ रहा है
सुषुम ठंड एक ताकत की तरह
मेरे भीतर प्रवेश कर रही है

एक गुलाब है जो पडोस की दीवार के पास
सिर उचकाकर ताक रहा है
एक नन्हीं बालिका झांक रही है जिज्ञासु आंखों से
सामने सीढियों पर बैठा रोटियां तोड रहा है छोटू लाल
और अखबार सादे हैं आज

इतना लिखते-लिखते चमकने लगा है सूर्य
डॉटपेन की छाया उभरने लगी है कॉपी पर
छत से लटकते पंखे पर एक गौरैया आ बैठी है
एक पंडुक आ बैठा है एंटीना पर
पडोस के खाली भूखंड पर दो बिल्लियां
एक अधमरे चूहे के साथ खेल रही हैं
एक चील उडती जा रही है सूरज की ओर
मानो ढंग लेगी उसे
उसके पंजे में कुछ है चूहा-मेढक या और कुछ
उसके पीछे कौवे भी हैं दो-चार

इधर चिंतित हैं कविगण कि चीते की तरह
खत्म तो नहीं हो जाएगी नस्ल आदमी की
उधर मुन्नन पढ रहा है जोर-जोर से
कि उर्जा का विनाश नहीं होता ...।
1996

किसी पल के इंतज़ार में / कुमार मुकुल

विवेकानंद को नहीं देखा मैंने
पछाड खाते समुद्र को भी नहीं
हिमालय को देखा है
पर दूर से

पर नदियां देखी हैं मैंने
नदियों की सपनीली आंखें देखी हैं
उनमें देखें हैं सपने समंदर के
और कछारों में
अस्थियां हिमालय की

क्या बादल एक दिन हिमालय को
डुबो नहीं देंगे समुद्र में
फिर नदियों के पास क्या काम रह जाएगा
निठल्ली, मर नहीं जाएंगी वे
फिर कैसे पछाड खाएगा समुद्र
वैसे विराट मृत समय में क्या करेंगे हम ।

गर्भ देखेंगे धरती का
शायद वहां हों ज्वालामुखी
किसी पल के इंतजार में ।

1993

गुड़हल / कुमार मुकुल

सांवले हरे पत्तों व सादे लाल फूलों के साथ
घर-घर में विराजमान मैं गुडहुल हूं
फिरंगियों के घर पैदा होता
तो डेफोडिल सा मेरा भी प्यारा नाम होता
जो बचाता बलि से मुझको
पर यहां निर्गंध हूं इसीलिए भक्तों का प्यारा हूं
मेरे पडोसी गेंदा-गुलाब
टुक-टुक मेरा मुंह देखते रहते है
ओर मैं मुट्ठी का मुट्ठी चढा दिया जाता हूं
पाथरों पर
कोई जोडा मुझे बालों मे नहीं सजाता
किसी की मेज की शोभा नहीं बढाता मैं
कॉपी के सफों में सूखकर
स्मृतियों में नहीं बदलतीं मेरी पुखुडियां

हर सुबह
यतीमों के मुख से छीने गये दूध के साथ
मैं भी पत्थरों पर गिरता हूं
और हर शाम
उसी के साथ सडकर
बुहार दिया जाता हूं ।
1996

चबूतरा : दो कविताएँ / कुमार मुकुल

1
बचपन में
गांव के कुएं के चौडे चबूतरे पर सोना
डराता था मुझे
फिर भी मैं सोता था वहां
क्योंकि चबूतरे पर
सपने बडे सुंदर आते थे
मैं डरता था कि कभी - कभी
बिल्ली चली आया करती थी
चबूतरे पर
मैं डरता कि कहीं बिल्ली के डर से
कुएं में ना गिर जाउं
इसी डर से कुत्ते को
अपने पास सुलाता था मैं
कभी कभी मैं झांकता कुएं में
तो आकाश उतराता नजर आता
मुझे यह अच्छा लगता पर तभी
एक काली छाया नजर आती मुझे
हिलती हुई
वह मेरी ही छाया होती थी
जो डराती थी मुझे
चबूतरे के पास ही
मेहंदी लगी थी
जो आज तक हरी है
दिन में जिस पर लंगोट सूखते हैं
और रात में उगते हैं सफेद सपने ।
2
एक कुआं है
महानगर में भी
बिना चबूतरे के
उसके निकट जाने पर ही
पता चलता कि कुआं है
अडोस पडोस के लोग सोचते हैं
कि इसे भरवा देना चाहिए

साल में एक बार छठ में
महातम जगता है इसका
कुछ लोग जिन्हें
इस लोकतंत्र में राय देने लायक
नहीं समझा जाता
वे कुएं के बारे में ऐसा नहीं सोचते
वह चाय की गुमटी वाला
ऐसा नहीं सोचता
जिसकी चाय के लिए पानी
इसी कुएं से जाता है
सुबह सुबह कुछ दूधिए
अपने गेरू वहीं धोते हैं
एक भिखमंगा
भरी दोपहरी में

नहाता है वहीं
पर पडोस में ही एक स्कूल है
ओर महानगर के सुनागरिक
ठीक ही सोचते हैं
कि उनके बच्चे इसमें गिर ना जाएं
भिखमंगे की एक ही संतान है
पर भिखमंगा अक्सर यह कहता हुआ
गुजरता है
कि इस मुए को एक दिन
इसी कुएं में
डाल देना है ।
1995

पहाड़ / कुमार मुकुल

गुरूत्वाकर्षण तो धरती में है

फिर क्यों खींचते हैं पहाड़

जिसे देखो

उधर ही भागा जा रहा है

बादल

पहाडों को भागते हैं

चाहे

बरस जाना पडे टकराकर

हवा

पहाड़ को जाती है

टकराती है ओर मुड जाती है

सूरज सबसे पहले

पहाड़ छूता है

भेदना चाहता है उसका अंधेरा

चांदनी वहीं विराजती है

पड जाती है धूमिल

पर

पेडों को देखे

कैसे चढे जा रहे

जमे जा रहे

जाकर

चढ तो कोई भी सकता है पहाड

पर टिकता वही है

जिसकी जडें हो गहरी

बादलों की तरह

उडकर

जाओगे पहाड तक

तो

नदी की तरह

उतार देंगे पहाड

हाथों में मुटठी भर रेत थमा कर ।

ट्रेन की खिड़की से / कुमार मुकुल

ट्रेन की खिडकी से
पहाड
देख रहा हूं मैं
छोटे-छोटे कई खडे हैं सामने
जिनकी पृष्ठभूमि के ढालवें मैदान में
बच्चे फुटबॉल खेल रहे हैं

केसी-कैसी शक्लें हैं इनकी
सीधा खडा है कोई स्तूप सा
मंदिर सा तराश लिए है कोई
एक की कमर पर
उकडूं बैठी है बडी सी चट्टान

मेढकी सी टिकी है पिछले तलुओं पर
मानों उछाल लेगी उुपर को अभी ही

यह उसकी अपनी मुद्रा है
समय जब भी उछालेगा
उसे नीचे उछालेगा
नीचे फुटबॉल खेलते बच्चों के कदमों में ।
1992

चरवाहे / कुमार मुकुल

चरवाहे बन सकते हैं शहंशाह

शहंशाह बन नहीं सकता चरवाहा चाहकर भी

तानाशाह बन सकता है वह

भोला-भाला व्यक्ति

बन सकता है पंडित ज्ञानी विराट

ज्ञानी हो नहीं सकता मूर्ख

पागल हो सकता है वह

आकाश छूती ज़मीन को

पाट सकते हो अट्टालिकाओं से

खींच सकते हो

कई-कई और चीन की दीवार

उसे बदल नहीं सकते समतल भूमि में

खंडहर बना सकते हो

वहाँ बोलेंगे उल्लू।

उदासी / कुमार मुकुल

ठिठोली करती
स्मृतियों के मध्य
कहाँ रखूं
तुम्हारी उदासी का
यह धारदार हीरा।

1997

सॉनेट (हर सांझ...) / कुमार मुकुल

हर सांझ, तेरे रूख का क्षण भर अवलोकन
क्यों मुझेको प्रतिक्षण उद्वेलित कर जाता है
वह क्या अदृश्य है जो, शून्य में संधि बन
मेरा अंतर तुझसे यूं जोडे रखता है।
क्या मिल जाता है, उस क्षण भर में ही मुझको
एक भाव गूंजता अंतर में, हर क्षण हर पल
पर व्यक्त उसे शब्दों में कैसे कर दूं मैं
हो कैसे अभिव्यक्त, जो है अब तक गोपन।

इन्हीं रहस्यों में उलझाता हुआ मैं खुद
को, कहीं बहुत कुछ सुलझाता जाता हूं।
मेरा जो भी छूअ वहां उस क्षण जाता है
उसे बचाना नहीं रहा अब मेरे वश में।
उस खोने में भी, बहुत कुछ पा जाता हूं
पा-पाकर हरदम पाना कुछ रह जाता है।
1988

सॉनेट (गर्व बहुत था...) / कुमार मुकुल

गर्व बहुत था मुझे, कि हूं मैं भी संन्यासी।
मन मेरा दृढ है, अडिग है और रहेगा
अगो भी, तब तक, जब तक रवि शशि तारक हैं
टिके गगन में , डिगा नहीं सकता कोई भी
मन मेरा। पर पहली ही लहर तुम्हारे
छवि की छलकी, वहम बह गए, सारे के सारे।
यह लगा कि वह तू ही है, बरसों से जिसको
ढूंढ ढूंढ कर हार गया था अन्तेवासी।

चलो हुआ यह अच्छा, भरम मिटा तो मेरा।
चलो कि एक दिन अपने इस अडियल अहम को
आहत होना था, सो यह भी आज हो गया।
कितनी सुंदर घडी सलोनी थी उस दिन वह
जब कि टूटा, टूट टूटकर हुआ था तेरा।
नजरों की एक ही लौ से, मिट गया अंधेरा।
1988

मिथक प्यार का / कुमार मुकुल

बेचैन सी एक लड़की जब झांकती है मेरी आंखों में
वहां पाती है जगत कुएं का
जिसकी तली में होता है जल
जिसमें चक्कर काटत हैं मछलियों रंग-बिरंगी

लड़की के हाथों में टुकड़े होते हैं पत्थर के
पट-पट-पट
उनसे अठगोटिया खेलती है लड़की
कि गिर पड़ता है एक पत्थर जगत से लुडककर पानी में
टप...अच्छी लगती है ध्वनि
टप-टप-टप वह गिराती जाती है पत्थर
उसका हाथ खाली हो जाता है
तो वह देखती है
लाल फ्राक पहने उसका चेहरा
त ल म ला रहा होता है तली में
कि
वह करती है कू...
प्रतिध्वनि लौटती है
कू -कू -कू
लड़की समझती है कि मैंने उसे पुकारा है
और हंस पड़ती है
झर-झर-झर
झर-झर-झर लौटती है प्रतिध्वनि
जैसे बारिश हो रही हो
शर्म से भीगती भाग जाती है लड़की
धम-घम-घम

इसी तरह सुबह होती है शाम होती है
आती है रात
आकाश उतराने लगता है मेरे भीतर
तारे चिन-चिन करते
कि कंपकंपी छूटने लगती है
और तरेगन डोलते रहते हैं सारी रात
सितारे मंढे चंदोवे सा

फिर आती है सुबह
टप-झर-धम-धम-टप-झर-झर-झर

कि जगत पर उतरने लगते हैं
निशान पावों के

इसी तरह बदलती हैं ऋतुएं
आती है बरसात
पानी उपर आ जाता है जगत के पास
थोडा झुककर ही उसे छू लिया करती है लड़की
थरथरा उठता है जल

फिर आता है जाड़ा
प्रतिबंधों की मार से कंपाता

और अंत में गर्मी
कि लड़की आती है जगत पर एक सुबह
तो जल उतर चुका होता है तली में

इस आखिरी बार
उसे छू लेना चाहती है लडकी
कि निचोडती है खुद को
और टपकते हैं आंसू
टप-टप
प्रतिध्वनि लौटती है टप-टप-टप
लड़की को लगता है कि मैं भी रो रहा हूं
और फफक कर भाग उठती है वह
भाग चलता है जल तली से।

याद / कुमार मुकुल

1
इधर
नहीं आयी
तुम्हारी याद
अपना चेहरा नहीं देखा इधर

आईना देखता पर दाढी बनाने भर
यूं
भूल सा जाने पर
दुखी नहीं
खुश भी नहीं
कि चलो अच्छा हुआ
नहीं
डरता नहीं
कि इस तरह भूल ही जाउंगा कभी
2
अनुपस्थिति तुम्हारी
कभी-कभी
खडी हो जाती है
मुकाबिल
पडाड सी
मौसम बदलने को होता है
हरसिंगार
बिछ रहा होता है बाहर
तब
निर्द्वद्व होती तुम्हारी हंसी
झड जाती है भीतर
3
तुम्हारी उपस्थिति
एक वजनी पत्थर
उठाता तो पता चलता ताकत का
उछाला नहीं जा सकता जिसे
टिकाना होता है छाती पर
तब गहराती है नींद ।
1997

प्यार / कुमार मुकुल

एक राह
जो देखती
मुड-मुडकर

नजदीकी
एकदम से
पास नहीं आती जो।

1996

प्यार में / कुमार मुकुल

1
प्यार में महानगरों को छोडा हमने
और कस्बों की राह ली
अमावस को मिले हम और
आंखों के तारों की रोशनी में
नाद के चबूतरे पर बैठे हमने
दूज के चांद का इंतजार किया
और भैंस की सींग के बीच से
पश्चिमी कोने पर डूबते चांद को देखा
हमने सुख की तरह
एक दूसरे का हाथ हाथों में लिया
और परवाह नही की बटोहियों की
2
कुछ ज्यादा ही
बर्तन मंजे प्यार में
पानी कुछ ज्यादा ही पिया हमने
कई कई बार बुहारा घर को
सबेरे जगे और देर से सोये हम
एक दूसरे को मार दुनिया जहान के
किस्से सुनाये हमने
और इतना हंसे
कि आस पास
प्यार के सुराग में बैठे लोग
भाग गये बोर होकर
3
प्यार में हमने
सबसे उंची चोटी चढी पहाड की
वहां हमने देखा कि पेड
कटकर शहर की राह ले रहे थे
वहां हमें दो सियार मिले
सियारों और पत्थरों को हमने
हरियाली और प्रेम के गीत सुनाये
और धीरे धीरे
उतर आये तलहटियों में।
1997

पहाड़ : छह कविताएँ / कुमार मुकुल

1

जीवन के विस्तारों में
अक्सर याद आते हैं पहाड
कि चाहे वे थकाते बहुत हैं
पर जल्द ही दे देते हैं कोई चोटी
जहां खडे हो
क्षण भर को
तटस्थ हो सकें हम
विस्तारों के चक्रवर्तीत्व से

2

ठूदी हवा शरीर से लगती है
तो सिहरते हुए याद आते हैं पहाड
यादों का भी सानी नहीं
छूते ही बरोबर कर देती हैं ये विषमताओं को
अब इसमें क्या तुक कि धुआं छोडती रेल को देख
एक लडकी की याद आती है

यादों में पहाड का वजन
फूल से ज्यादा नहीं होता
ना ही फूलों से कम खूबसूरत लगते हैं पहाड
यादों में संभव होता है
कि हम चूम सकें पहाडों को
जैसे उन्हें चूमता है आकाश

3

नीचे उतर आया हूं पहाडों से
सोचता कि अभी चोटी पर था
चोटी को देखता हूं तो लगता है
कि क्या सचमुच वहां था

ऊपर शून्य में कोई कैसे लिखे
कोई नाम
पांव तले की चट्टान भी
नाम स्वीकारेगी क्या

तब तोडता चलूं पत्थर कुछ
टुकडे चमकदार याद में
पर क्या पत्थर पहाड होते हैं

4

मारे खुशी के हांप रहा हूं
चोटी चढी है पहाड की
अब उतरना है नीचे

आश्रय नहीं दे पातीं
तो बनती क्यों हैं चोटियां

वहां बादल है हवा है सूरज है

पर जडें क्यों नहीं हैं
होता है यहीं पत्थर हो जाएं
पर लगेंगे करोड बरस

5

पहाडों क्या तुम्हारे हाथ नहीं होते
इच्छाएं नहीं होतीं चोटी से ढकेलने की

बलाते हो दूर से सिर भी चढाते हो
फिर उतरने क्यों नहीं कहते

पछताते हम ही उतरते हैं
कि उतरे क्यों
उतारे जाने का डर तो नहीं

नहीं ऐसा नहीं करोगे
यही सोचते खुश उदास होते
हम उतर आते हैं पर उतर पाते हैं

6

हो तो पहाड
पर कैसी सफाई से
पैठ जाते हो स्मृतियों में हमारी
और भी गहरी काली हरी चट्टानें बनकर
और सोते गर्म ठंडे जल के

इतने हल्के हो जाते हो
कि लगाते हो दौड
भूल जाते हो
कि धुंध सी ये स्मृतियां हैं हमारी
हवाएं नहीं कि चीरे चले जाओ

खुद छलनी हो जाएंगी ये
पर अगोरेंगी तुम्हें
पर कैसे बेरहम हो
अकेला पाते ही
होने लगते हो सवार छाती पर।

1997

मेरे रक्त के आईने में / कुमार मुकुल

मेरे रक्त के आईने में

खुद को सँवार रही है वह

यह सुहाग है उसका

इसे अचल होना चाहिए

जब कोई चंचल किरण

कँपाती है आईना

उसका वजूद हिलने लगता है

जिसे थामने की कोशिश में

वह घंघोल डालती है आईना

हिलता वजूद भी फिर

गायब होने लगता है जैसे।

पत्नी / कुमार मुकुल

चांदनी की बाबत
उसने कभी विचार ही नहीं किया
जैसे वह जानती नहीं
कि वह भी कोई शै है

उसे तो बस
तेज काटती हवाओं
और अंधडों में
चैन आता है
जो उसके बारहो मास बहते पसीने को
तो सुखाते ही हैं
वर्तमान की नुकीली मार को भी
उडा-उडा देते हैं

अंधडों में ही
एकाग्र हो पाती है वह
और लौट पाती है
स्मृतियों में

अंधड
उखाड देते हैं उसकी चिनगारी को
और धधकती हुई वह
अतीत की
सपाट छायाओं को
छू लेना चाहती है ।
1996

बाई जी / कुमार मुकुल

पडोस में लेटी पत्नी गुनगुना रही है
मेरी खिडकी के पूरब में महानगर खाली है
और रात्रि के आलस्य को बजाती
पूरबा आ रही है
पत्नी गा रही है भजन घन घन घनन
नुपूर कत बाजय हन हन ...
नाचने गाने की मनाही है घर में
पर भजन पर नहीं घन घन घनन

सब सिमटे आ रहे कमरे में
मां, भाई, बहनोई, बहन घन घन घनन
नुपूर बज रहे हैं कांप रही हैं दीवारें
बज रहे हैं कपाट कहती है मां - कइसन भजन बा।
चुप रहते हैं पिता
भाई गुनगुनाता है धुन को
और सपने बुनने लगता है
छोटी बहन खिलखिला रही है
और निर्दोषिता से हंसती
छोटे भाई को हिला रही है
बडी बहन जमाई से आंखें मिला रही है
और पत्नी गा रही है
विद्यापति कवि ... पुत्र बिसरू जनि माता ...
समाप्त होता है भजन
ताली बजाते हैं सब तड तड तड... बोलते हैं
आप खूब गाती हैं बाई जी ...।
1992

सबसे अच्छे खत / कुमार मुकुल

सबसे अच्छे ख़त वो नहीं होते

जिनकी लिखावट सबसे साफ़ होती है

जिनकी भाषा सबसे खफीफ होती है

वो सबसे अच्छे ख़त नहीं होते

जिनकी लिखावट चाहे गडड-मडड होती है

पर जो पढ़ी साफ़-साफ़ जाती है

सबसे अच्छे ख़त वो होते हैं

जिनकी भाषा उबड़-खाबड़ होती है

पर भागते-भागते भी जिसे हम पढ़ लेते हैं

जिसके हर्फ़ चाहे धुंधले हों

पर जिससे एक चेहरा साफ़ झलकता है

जो मिल जाते हैं समय से

और मिलते ही जिन्हे पढ़ लिया जाता है

वो ख़त सबसे अच्छे नहीं होते

सबकी नज़र बचा जिन्हें छुपा देते हैं हम

और भागते फिरते हैं जिसकी ख़ुशी में सारा दिन

शाम लैंप की रोशनी में पढते हैं जिन्हें

वो सबसे अच्छे ख़त होते हैं

जिनके बारे में हम जानते हैं कि वे डाले जा चुके हैं

और जिनका इंतज़ार होता है हमें

और जो खो जाते हैं डाक में

जिन्हें सपनों में ही पढ पाते हैं हम

वे सबसे अच्छे ख़त होते हैं।

उदासी का सबब / कुमार मुकुल

रिबोक जूते की दुकान में आईने में
अपनी शक्ल देख अपनी औकात मापता हुआ
आज मैं दूसरी बार उदास हो गया
तब मैथिली कवि महाप्रकाश की पंक्तियों ने
ढाढस बंधाया - जूता हम्मर माथ पर सवाल अछि ...
और याद आईं रिबोक टंकित टोपियां
जो परचम बनी लहराती रहती हैं

तलाशा हालांकि उदासी का
कोई मुकम्मल कारण नहीं मिला

आईने में मेरी सफेद पडती दाढी थी
क्या वही थी उदासी का सबब

कानपुर में वीरेन दा ने यूं ही तो नहीं टोका था
मेरी बढ आयी दाढी पर

लौटते रेल में पति के साथ बैठी नवब्याहता भी
घुल मिल गयी थी

तो ... हजामत करूं नियमित
पर ऐसे क्या ...
उदासी आंखों में पैठ गयी तो

सोचता हूं दौडूं और उदासी को
पीछे छोड दूं।

1998

महानता की घिसटन / कुमार मुकुल

पहले वे स्त्री लिखते हैं
उन्हें लगता है कि
देवी लिखा है उन्होंने
देवी एक महान शब्द
फिर वे स्त्री को
सिरे से पकडकर
घसीटते हैं
कोई आवाज नहीं होती
बस लकीर रह जाती है शेष

कलाकार बताते हैं
कि यह एक कलाकृति है
संगीतकार उसे साधता है
सातवें स्वर की तरह
नास्तिक उसमें ढूंढता है
चीख की कोई लिपि
कवि वहां की रेत में
सुखाता है अपने आंसू

अब कलाकार नास्तिक कवि और संगीतकार
सब महान हो उठते हैं

इस तरह
एक महान शब्द की
घिसटन से
महानता की संस्कृति
जन्म लेती है।

1996

उम्र के साथ / कुमार मुकुल

उम्र के साथ
बहुत से लोग
बदलते चले जाते हैं
तलवारों में

एक दिन अचानक
उन्हें लगता है
कि वे तमाम हिस्से
जहां वे रहते हैं
म्यानों में बदलते जा रहे हैं

फिर
किसी और की आहट
वहां
असह्य होने लगती है
उनका सहज भोलापन
कटता जाता है
उनकी अपनी ही धार के नीचे
आ◌ैर संबंध कटते जाते हैं

भाई
नहीं रहता भाई
गोतिया हो जाता है
मां, मां नहीं रहती
चार बीघे जमीन हो जाती है
पत्नी बदल जाती है
प्याज, हींग-हल्दी की गंध में
दोस्त नहीं रहता दोस्त
अतिथि हो जाता है

तब
ये तलवारें
घरों परिवारों गांवों को
काटती चली जाती हैं
मुल्क की सरहदों तक
और सबको समझाती हैं
कि तलवारें नहीं हैं वे
राष्ट्र हैं
और राष्ट्रहित से बढकर
कोई चीज नहीं
न गांव
न परिवार
न घर।

1996

वह मेरी मेरी माँ ही सकती है / कुमार मुकुल

तारों की मद्धिम आंच में पका हुआ वह जो चेहरा है
वह मेरी का ही हो सकता है
पता नहीं पहले कौन पैदा हुआ था, वह या मैं
शायद मैं ही गया था अपनी बाहों के बल
उसके वक्षों तक और उसके आंचल में दूध उतर आया था
वह मेरा ही रंग था जिसकी छाया जब पडी थी
उसकी धूपहली आंखों पर
तो उग आयी थी वहां करूणा की छांह
उसकी शोखी उसकी चंचलता के मार तमाम रंग
चुरा लाया था मैं ही
धीरता की स्याह स्लेट पट्टी
बाकी रह गयी थी उसके पास
अपनी उधेडबुनें घिस घिसकर
जिसे मैंने धूसर बना डाला था
धरती की तरह

बां.... यह संबोधन
पहली बार उतरा था मेरी ही आंखों में
उसने सुधारा भर था कर दिया था मां...

सुनहले पाढ की कत्थई साडी में
सूर्य को अर्घ्य देती
वह मेरी मां ही हो सकती है
उसकी आंखों की पवित्रता में
अक्सर डूबने लगता है अग्निवर्ण सूर्य
उसको देख लगता है ईश्वर अभी जिंदा है और
समय के पाखंड से घबराकर
जा छुपा है उसकी आंखों में
वह मेरी मां ही हो सकती है
मेरी कविताओं के तमाम रंगों से ज्यादा
और लकदक रंगों की साडियां हैं उसकी
छुपा लेती हैं जो मुझाके मेरी लज्जा को
मेरे भय को।
1993

नेटरा हाथ / कुमार मुकुल

लेटा पढता होता हूं
तो किताब उठाये रखता है दाहिना
और हल्के थामे नेटरा
पलटता चलता है पन्ना
लिखते लिखते रूक जाती है कलम
तब होंठों को सुसराता है नेटरा
जैसे जानता हो किधर छुपे हैं भाव
फिर कलम सरकते
ठुड्डी से अड देखता है निस्पंद
लिखते दाहिने को
जैसे खबर ही ना हो कुछ
सोते चिंतक की मुद्रा में
माथे पर पडा होता है दाहिना
तब नेटना लेटा रहता है
अनपढ प्रिया सा पास ही
कहीं सुरसुरी होती तो सहलाता
फिर दाहिने की अंगुलियों में
अंगुलियां फंसा
मनौवल करता सा सो जाता

झगडा झांटी में
लपक लेता दाहिना
कॉलर किसी का
तो अनहोनी के भय से कांपता नेटरा
विनती करने लगता ईश्वर से
बॉस को यंत्र सा
सैल्यूट दागता दाहिना
तो शर्म आती नेटने को
और बगल छिपने की कोशिश करता वह

मित्रों से भेंट बखत
पछताता नेटरा
विदा की बेर भी
उछल उछल देर तक
हाथ हिलाता दाहिना ही
बछडे की पीठ भी वही सहलाता

पर गाय दूहना हो या समाज
नेटरे को घसीट लेता साथ वह
सारी गंदगी साफ कराता उसी से
और थमा देता रूमाल
लो पडे रहो ल‍िपटे बांयी जेब में

कभी तो चुनौती ही दे देता नेटरा
कि रस्सी बंटने से बेलचा चलाने तक
बंदूक थामने से बोझ उठाने तक
है कोई काम जो हो बगैर नेटरा के

एक दिन मुझे लगा
कि दम है नेटरा में

तो पकडा दिया कलम
कि उतारे प्रेमगीत कोई
बिचकती अंगुलियों से

तब बना दिये उसने
कौए के टांग कई
बचपन में जैसा
लिखा करता था दाहिना

तब साहूकार से
लाया सिलेट पिनसिन
पकडाया नेटरा को
भारी भारी सा
लग रहा था उसे
कि बहाना कर रहा था वह
मैंने समझाया
भारी है
तो रख दो जमीन पर
और लिखो
पालथी मार कर लिखो।

1990 मंगलेश डबराल की एक कविता पढकर।

खुशी का चेहरा / कुमार मुकुल

खुशी को देखा है तुमने क्या् कभी
श्रम की गांठें होती हैं उसके हाथों में
उसके चेहरे पर होता है
तनाव-जनित कसाव
बिवाइयॉं होती हैं खुशी के तलुओं में
शुद्ध मृदाजनित

खुशी की
हथेलियॉं देखी हैं तुमने
पतली कड़ी लोचदार होती हैं वो
जो अपनी गांठें
छुपा लेती हैं अक्सर
अपनी आत्मा में
उस पर चोट करो
देखों कैसे तिलमिलाकर
उभर आती हैं गांठें

चेहरे के तनावजनित कसावों को
छेड़ने से ही
फूटती है हँसी
ध्वनि की तरह

तलुओं में ना हों तो
खुशी की स्मृत्तियों में
जरूर होती हैं बिवाइयॉं
वहॉं झांकोगे
तो फँसी मिटटी पाओगे
उसे मत निकालना गर्त्त से
रक्तम
फूट पड़ेगा उनसे

बड़े गहरे संबंध होते हैं
मिटटी के और रक्तो के
सगोत्रिय हैं दोनों

अपनी आत्मा को
जानते हो तुम

खुशी की आत्मा
खुशी के पैरों में निवास करती है
तब ही तो
इतनी तेज दौड़ती है खुशी
एक चेहरे से
दूसरे तीसरे व तमाम चेहरों पर

कभी खुश हुए हो तुम
श्रम
किया है क्या कभी
दौड़े हो घास पर नंगे पॉंव
या फिर रेत पर

तो तुमने जरूर देखा होगा
कि कैसेट
हमारे पॉवों में पैसी आत्मार
मिटटी से
चुगती है संवेदना
और कैसी तेजी से
हरी होती हैं
मस्तिष्क की जड़ें

यहॉ से वहॉ उड़ान भरती
कैसी उन्मुनक्त होती है हँसी
और निर्द्वद्व कितनी
कि पकड़ में नहीं आती कभी
कैमरे में बंद करो
तो तस्वींरों से फूट पड़ती है
मन में बंद करो
तो आंखों से

क्यां करे वह
कि समय कम है उसके पास
और
असंख्य हैं मनुष्य
पीड़ा से बिंधे हुए
और सब तक जाना है उसे

खुशी की
ऑखें होती हैं हिरणी सी
विस्फाहरित तुर्श साफ व सजल
छोटी सी पीड़ा भी
डुला देती है उसे
बह आता है जल
टप-टप-टप

बड़ा गम भी
पचा लेती है खुशी
कभी वही
गॉठ बन जाती है
कैंसर की

पर श्रम की गॉठ
जियादा कड़ी होती है
गम की गॉठ से
उसे गला देती है वह

खुशी जानती है
कि जियादा से जियादा
क्या कर सकता है गम
उसे माटी कर सकता है

मिटटी की तो
बनी ही होती है खुशी
खिलौनों सी

उसके टूटने पर बच्चे रोते हैं
कुम्हार नहीं रोता
वह जानता है श्रम को
पहचानता है खुशी को
गढ लेगा वह और और नयी

बारह से
पॉव होते हैं खुशी के
मृगनयनी होती है
पर मृगमरीचिका नहीं देखती खुशी

पहले
कड़कती है बिजली
फिर होता है बज्रप्रहार

गरजता

जैसा आता है दुख
वैसा ही चला जाता है
पर चक्रवातों और
दुख की सूचनाओं की तरह
सन्नाटे का
व्यामोह नहीं रचती खुशी
आना होता है
तो आ जाती है चुप-चाप
भंग करती सन्नांटा

आती है
तो जाती कहॉ है खुशी
रच-बस जाती है सुगंध सी
खिला देती है
पंखुड़ियों को
फिर बंद कहॉ होती हैं पंखुड़ियॉ
झर जाऍ चाहे

गमों में
सब छोड़ देते हैं दामन
तो बच्चेे
थाम लेते हैं खुशी को
और भरते हैं कुलॉच

तब बड़े नाराज होते हैं
उन्हें मारते हैं चॉटे
और खुद रोते हैं

कुत्ते की तरह
हमेशा
हमारे आगे-आगे
भागती है खुशी
बच्चों सी आगे आगे
साफ करती चलती है रास्ताआ

वह देखती है पहाड़

और चढ़ जाती है दौड़ कर
वहीं से बुलाती है

नदी को देखते ही
गुम हो जाती है
भँवरों में

जंगल को देखते
समा जाती है दूर तक
फिर कहीं से
करती है
कू-कू-कू
हम भागते हैं उसे पाने को
भागते चले जाते हैं
हॉपते ढहते ढिलमिलाते
उसी की ओर

जंगल काटते हैं
और बनाते हैं पगडंडियॉ
भँवरों से लड़कर
बनाते हैं पुल
पत्थेरों को छॉट
चढते हैं पहाड़

शायद इसी तरह बने हैं
तमाम रास्ते सभ्यता के

खुशी को ढूंढता
कोलंबस
अमरीका ढूंढ लेता है

एवरेस्ट तक
हमें खुशी ले जाती है

चॉद पर
जाती है खुशी
और कहती है
मंगल पर चलो

कभी
पीछे लौटकर नहीं देखती खुशी
स्मृतिविहीन अतीत का रास्ता
नहीं होता है उसका
डायनासोर मिलते हैं जहॉ
जो अपना भविष्य
खुद खा जाते हैं।

बच्चों की जिच / कुमार मुकुल

खिडकी के सीखचों से सटाकर
एक खाली डब्बा बांध रखा है मैने
अमूल का
ओर ढक दिया है उसे
सादे कागज से
कि भद्द ना हो दीठ की
और इंतजार में हूं कि
कोई गौरैया
इसमें वास करे

यूं
पडोस के नये निर्जन मकान में भी
रह सकती है वह
पर मैं जानता हूं
अगहन में जब धान पकेंगे
तब कंकरीट के जंगल में
मौसम की निर्जनता
मुझे ही नहीं
इस घरेलू चिडिया को भी खलेगी

इस नये बसते शहर के पडोस में
जब फसल कटेगी
और धान की एक लरछी
आपनी चोंच में दबाए
लंबी दूरी तय कर चिडिया लौटेगी
तो कैसा सूना लगेगा
जब नहीं दौडेगा कोइ्र सोनू
गट्टू या हैप्पी उसके पीछे
चिडिया के पीछे भागता
जब आएगा सोनूलाल
और छमक कर जा बैठेगी वह मुंडेर पर
तो चिढकर बोलेगा सोनू
देखिए तो अब्बा
गौरैया घर गंदा कर रही है
ओर चुप रहेंगे अब्बा
तब पूछेगा वह
गौरैया तितली को खा जाती है न अब्बा
तब सिर हिला देंगे अब्बा
वह फिर पूछेगा
चिडिया दाना भी तो खाती है
ओर दौडा जाएगा मां के पास
कि पहले उसे दाना दे
फिर कोई काम करे
फिर दाना ले दौडा आएगा वह
फेंकेगा चारा
पर चिडिया तो एक ही जान ठहरी
नहीं ही आएगी
तब उदास हो थककर
सो जाएगा वह

तब सपने में आएगी चिडिया
दाना चुगेगी उसके गुदाज हाथों से
उसकी तलहथी में जब
चिडिया की चोंच गडेगी
तो गुदगुद से जागेगा वह
और पायेगा कि गायब हैं दाने

इसीलिए खिडकी के सीखचों से
सटाकर
मैंने बांध रखा है एक डब्बा
कि कोई चिडिया इसमें वास करे
चिडिया रहेगी
तो खोज-खबर लेने
आ ही जाया करेगी बिल्ली
बेला की झाडों में दुबकी
अपनी पयारी नजरों से
जब घूर रही होगी वह
तो कभी दिख ही जाएगी चिडिया को
फिर दरवाजा तो बंद करेगी नहीं चिडिया
चीख-चीख कर वह
लगेगी जगाने जनपद को
जनपद जगे न जगे
सोनू तो जग ही जाएगा,
भागा आएगा चिडिया के पास
ओर घूरता पाएगा बिल्ली को
फिर तो ऐसा डरेगा
कि ढेला उठा पिल पडेगा बिल्ली पर
और चिडिया तो
चढ जाएगी मुंडेर पर
वहीं से गाएगी जोर से
कि कितना बहादुर है मेरा सोनू
कि समझदार है साेनू
कि अब बडा हो रहा है सोनू

चिडिया आएगी
तो जाने
ओर क्या क्या लाएगी साथ
किससे तो लाएगी ही वह
जंगल के
जंगल की आग के किस्से
जंगल के नागों के किस्से
आग के किस्से सुनाती
चिडिया की आंखें जब सूनी हो जाएंगी
तो बेचारा चिडा क्या सोचेगा
कि सूनेपन में उसके
किसी बिछडे चिडे की
राख बिछी है

और नागों के किस्से
उफ
पत्थर की बांबी में

हीरे-माणिकों के आसनों पर
सर काढे नागों के किस्से
कितना समझ़ाती थी वह
नन्हें चिडों को
कि उधर मत जाना
जिधर मणि-माणिकों की चकाचौंध
छिटकी हो

पर नौ माह
गर्भ के अंधेरों मं उजबुजाए
बच्चों की जिच
कौन नहीं जानता।

1991

हम क्या करें / कुमार मुकुल

परंपरा की लीद संभाले
जो धंसे जा रहे और खुश हैं वो मूर्ख हैं

यह मूर्खता सहन नहीं कर पा रहे जो
पागल हैं वो

मूर्खें और पागलों से अटा जो परिदृश्य है
वह इतिहास है और बुद्धिमान
मूर्खें और पागलों की टांगों के मध्य से
भाग रहे हैं भविष्य को

हम क्या करें कि पागल प्रिय हैं हमें
और बुद्धिमानों को हम सर नवाते हैं ।
1997

चिड़िया का बच्चा / कुमार मुकुल

एक चिडिया का बच्चा जब
सूरज की तपिश से जलने लगा
तो जाने क्या सूझी उसे
कि बुझा देने की नीयत से
सर उठाकर उसपर थूक दिया

अब सूरज की सेहत पर इसका क्या असर पडा
पता नहीं
पर उसके वंशधरों को यह नागवार गुजरी
सो अस्त्र-सश्त्र ले पड गये उसके पीछे
अब आफत की मारी वह नन्हीं सी जान
लगी भागने इसे लोक से उस लोक
उसे कौन शरण देगा
चांद तोर आपस में बतिया रहे हैं
कि इसे बस खुदा ही बचा सकता है
अब खुदा को कोई कहां ढूंढे

सबका ऐसा विश्वास है

कि चिडिया का बचना मुश्किल है
ग्रहों के कैमरे चिडिया पर नजर टिकाये हैं
कि चिडिया मरे कि एक
हेडलाइन न्यूज तैयार हो
जिसकी जगह अभी खाली है।

1988 , तसलीमा नसरीन के लिए

शमशेर / कुमार मुकुल

चिकनी धूल भरी बदली ज्यों शुष्क भुर-भुरी
तलुए दो या छायाएं हृदय की
कि दो विमान खो ... खो ... जाते बदली में
कि ढलान गुरूत्व खिसकाता
घाता धंस आता वक्ष रेतीला
थिरता ... आ तटी पर
धाराएं खिसकातीं तली
भीरू मन छूता जल कांपता दो पल
छटपटाती चेतना की जीभ
अतहतह प्राण देते ढकेल धारा मध्य
सौंदर्यकामी आत्मा
देती उलीच
सारा भय निरभय ।
1991

समय की दराँत पर / कुमार मुकुल

समय की दरांत पर
बजखते जख्म सा
गुजर रहा है विश्व
फटे होंठ बिसूरता हमारा मुल्क भी
निकला है अभी अभी

वर्तमान के कंधों
अतीत की लाशें लाद
उन्हें जडी सुंघा रहा है धर्म
और जलती चीखों से अंटे पडे हैं राजपथ
गलियों से निकलती पुलीस
लगा रही कर्फ्यू दुर्गंध के भभकों पर

जनक्रंदन की लहरों पर
कलरव करते चले आ रहे राजनेता
जख्मों से रिसता रक्त चख रहे
बतला रहे कि खालिस मुफलिसों का है

चुल्लू भर अपने ही रक्त में डूबकर
दम तोड रहा है कवि
कि उसकी छटपटाहटों के बुलबुले ही
रह जाएंगे हमारी विरासतें ।

1991, रघुवीर सहाय की मौत पर

पितरिया लोटा / कुमार मुकुल

बैठते ही पानी के लिए
पूछते हैं **अरूण कमल**
देखता हूं
बडा-सा
पितरिया लोटा उठाए
चले आ रहे हैं

अरे रे आपके हाथ में यह
लोटा है या पृथ्वी है पूरी
अपनी सुगंध अपनी नदी
अपने तेज के साथ

महानगर की इस कोठली में
सूर्य की तरह उद्भासित होता
यह लोटा
इसका भार उठाए
कैसे लिख लेते हैं आप
ऐसी सुषुम गुनगुनी कविताएं

फिर ग्लास से ढाल पिया जल
तो पितरैला स्वाद उसका
चमकने लगा नसों में मेरी
किताबों से अंटे उस कमरे पर
भारी पड रह था वह लोटा
सो अदबदाकर उलट दिया उसे
अह रह क्या फैल गया कमरे में
सुगड्डू भोरे-भोर
डाल से चुए सेनुरिया आम
हाथ मीजने के लिए
खेतो से ली गयी मिट्टी
और यह जल सोनभद्र का

इसमें दाल
अच्छी पकेगी ।
1991

कुहरा और सूरज / कुमार मुकुल

पूरा पखवारा कुहरे ने सूरज को ढांके रखा
बोरसी और मुटिठयों में बचा कर रखी गयी आग
आखिर काम आ चुकी थी
हो रहा था कि हाथों और पैरों को पेट में छुपा लूं
क्रोध आ रहा था मुझे किस पर पता नहीं
मजाक सूझ रहा था किससे पता नहीं
फिर जोर की हांक लगाई मैंने
राम जी राम जी घाम करअ

कोहरे की चादर चटखने लगी

बच्चों ने मेमनों और पिल्लों को संभाला
और भागे नहरों बगइचों सिवानों की ओर
मैं भी घर की पिछाडी आया
सूरज से अपनी नाराजगी जाहिर की
और उसकी ओर पीठ कर बैठ गया
पर सूरज नाराज नहीं हुआ
अपनी गर्म हथेलियों से
मेरी पीठ सहलाई उसने
मैंने देखा गौरैया सूरज भैया से जरा नाराज नहीं
चुक चिक करती कीडे गटक रही है वह

अपना चेहरा सूरज की ओर किया मैंने
पूछा कहां थे कहां थे इतने दिनों
देखो क्या गत बना दी है जाडे ने मेरी

सूरज की आंखें तलाशी मैंने
उससे विवशता झांक रही थी कह रही थी
आ ही तो गया क्या यही काफी नहीं है
रूठना छोडो मुस्कुराओ खुल कर
और मेरी आंखों में आंसू आ गये।
1990

सॉनेट (भीतर कैसी दो) / कुमार मुकुल

भीतर कैसी दो उथल-पुथल है, भावों का
रेला चलता है, बैठा विचार हाथ मलता है
भावों की हत्या मैं कर दूं, पर अभावमय
मेरा जीवन है, जीवन को कुछ लंबा कर दूं।
और, ठौर फिर कहां मिलेगा, अब बची हुई
कितनी आंखें हैं जिनमें जल है बाकी, तल है
सूखा घट-घट का जिसमें अर्थ भरा हे, व्यर्थ
किसे कैसे कर दूं मैं किस - किस अनर्थ को।

बंधन कोई नहीं पर सर पर बोझा है
उसको साधे दौडूं तो खप जाए जीवन।
इसी साधना में, और आराधना बाकी रह जाए
जन - जन की, बोझों में बंधा हुआ जीवन है
पल-पल मरता,जो उचित कहीं मिलता जल,वायु
मिलती तो छोड इसे मैं दौड चला जाता जनपथ पर।

1992, त्रिलोचन के लिए

ग़ज़ल (जाने यह किससे) / कुमार मुकुल

जाने यह किससे क्या लगा बैठा

वो चांद से उतरा तो तारों में जा बैठा।

हमने सोचा था क्या के ऐसा होगा

जो पास था वो मुफ़लिस का ख़्वाब बना बैठा।

होशो-हवाश के मिरे क्या कहने

सिराने मीर था जो पैताने कबीर जा बैठा।

समझाएँ कैसे किसे क्या समझाएँ

बात आई थी दिल में के ज़बाँ कटा बैठा।

फिरा जो सिर तो ख़ाब से जी लगा बैठा

ख़ाब तो ख़ाब था ये जा के वो जा बैठा।

सॉनेट (इकलौता तारा) / कुमार मुकुल

इकलौता तारा जलता पश्चिमी क्षितिज पर
डूब अभी जाएगा क्षण में, मानस पट पर।
उग आएगा तब वह और प्रज्वलित होकर
दिप - दिप करता हुआ जलेगा, इत - उत फिरता
हुआ अंत में वो थिर होगा उर में मेरी
आंखें बन कर । अंतस को मेरे भर देगा
मधुर ज्वाल से और काल से , टक्कर लेगा
डटकर, रह जाएंगी उसकी आंखें फटकर ।

काल ढाल है चुके हुओं का झुके हुओं का
जो जीवन रण छोड चुके मोड चुके हैं मुख
सकाल से । पर जिनकी सुबहें नहीं भरोसे
किसी सूर्य के, कहीं किसी इकतारे की
धुंधली धुन पर, चलते - रहते हल्की सी
भीगी उजास में आस छिपाए विलम-विलम कर।

1999

सॉनेट (गोबर अब गणेश हो रहे) / कुमार मुकुल

गोबर अब गणेश हो रहे,शेष हो रहे
अवगुण उनके। कल तक के विघ्न-विनायक
आजकल सारे क्लेश धो रहे अभिजन के।
काले ग्रेनाइट पर तोंद तराशी जाती
डिम-डिम कर बजती उस पर गुल-थुल छाती।
छाती तोंद संभाले उपर सूंड झूलती
नहीं भूलती आगे रख्खी लड्डू भर थाली
ताली बजा रहे ताल में पंडित मावाली।

दूध पी रहे चम्मच से कंटर का कंटर
सुध-बुध खो देते दो दिन को सारे जन-गण ा
मारें ऐसा मंतर। नेता अभिनेता सब
मिल जुलकर गाएं हरकिर्तन,नर्तन करें
बॉलीउडी बालाएँ, दरसाएं जादू जब
जोबन का,जल जाएँ इच्छाऍं भक से जन की।
1999

गीत (इक सितारा) / कुमार मुकुल

इक सितारा टिमटिमाता रहा सारी रात

वो सुलाता रहा और जगाता रहा

पहलू में कभी, कभी आसमान पर

वह उनींदे की लोरी सुनाता रहा।

इक ...

रूप उसका समझ में क्या आए कभी

रोशनी उसकी पल में आये-जाये कभी

खुशबू उसकी और उसके पैरहन

सपनों से नींद में आता जाता रहा।

इक ...

रंग उसका और उसकी आवाज क्या

लाऊं आखर में मैं उसके अंदाज क्या

रू-ब-रू उसके आंख खुलती नहीं

भोर तक उस पे नजरें टिकाता रहा।

इक ...

पलकों पे शबनम की बूंदें हैं अब

और रंगत फलक की श्वेताभ है

सूर्य आएगा इनको भी ले जाएगा

मानी क्या मैं रोता या गाता रहा।

इक ...

{1998- फैज के लिए }

काली भैंस / कुमार मुकुल

इन पठारी इलाकों में
घिस कर चिकनी हो चुकी चट्टानें
कैसे बिखरी हैं
जैसे मवेशी बैठे हों इधर-उधर

लगता है कि मैं दौडूंगा
और काली भैंस सी पसरी चट्टान पर
जा बैठूंगा

बैठते ही
चल देगी वह उठकर
सामने बहती नदी की ओर
रास्ते में
सीग उग आएंगे उसको
जिन्हें पकडकर मैं
नहाउंगा नदी में
डूब - डूब ।
1993

जैविक ख़तरा / कुमार मुकुल

लैंपपोस्ट के ऊपर के अंधकार में
कीटों पर
झपाटे मार रहे हैं चमगादड
और पोल से लगे तार पर बैठा उल्लू
लपकने की तैयारी में है उन्हें

लैंपपोस्ट को छूती रोशनी
जहां छू रही है अंधेरे की चादर
वही एक बिल्ली चिपकी पडी है
पोस्टर सी
ओर गाडियां गुजर रही हैं ऊपर से

शायद अपना ही रास्ता
काट गयी थी बिल्ली
और उसकी हड्डियों का मलबा
समतल हो गया था सडक की खांचों में

रोशनी के साथ
कीडे भी झार रहे हें सडक पर
हरे टिड्डे, झिंगुर और पतंगे
इनमें अाधिकांश का रास्ता
वाहन काट जा रहे हैं
वाहनों की मार से बचता-बचाता
एक अघोरी कुत्ता
छिपकली सा
चट कर जा रहा है यह जैविक कचरा।
1995

नई मंज़िल / कुमार मुकुल

दूसरी मंजिल की छत पर
डूब चुके सूर्य की
ठंडी होती सरल गंध में
अतराना अच्छा लगता है
आगे नाले पार का
गेहूं की बालियों से पटा
भू-भाग है
बहुमंजिलो अपार्टमेंट यहां सिर उठा रहे हैं
इमारतों की ऊंची टंकियों पर
गिद्ध बैठे हैं

प्रतीक चिन्हों की तरह स्थिर
क्यों बैठे हैं गिद्ध
क्या वो
मुआयना कर रहे हैं शहर का
या कट गये ताड वृक्षों की जगह
नयी मंजिल
तलाश ली है उन्होंने।
1996

चील / कुमार मुकुल

गंगा किनारे
पम्प हाउस के डबरों के ऊपर लगी रेलिंग पर
बैठी हैं चीलें
कतार में
उनकी लंबी पूंछ खींचते
कौए
उनसे अपने हिस्से का भोजन मांग रहे हैं

इतनी निकट से पहली बार देखा चीलों को
पहले उनके बाज होने का शक उभरा
फिर उनकी जमात देख चिंतित हुआ
और सोचा अखबारी फोटोग्राफरों के लिए
अच्छा बाजार हैं ये
तभी एक चील उडी
और चली गयी दूर तक
गोता खाते
और वहीं चक्कर खाते थिर होने लगी
तब खुश हुआ
कि ये चीलें ही हैं
और यह विचार स्थिर हुआ कि
चीलों अौर बाजों की प्रजाति एक है
वैसी ही काउंस आंखें
और अकुंशाती चोंच
बस बडा कद ही है इनका
जो इनकी महत्ता घटा रहा है।
1996

अंतड़ियों में ब्रहमांड / कुमार मुकुल

नाव पर
अपने जूते छोड
भागता हूं
भागता जाता हूं
तेजी से रेत पर
वो सामने रहा
काशी का पुल
वो दूर छूट गया मल्लाह
अब नजदीक आ रहा है
मोगलसराय का जंगल

ओह कितनी थकाती है रेत
थकान कितना काटती है ऊब को
फिर भागता हूं रेत पर हिरण की तरह
जैसे बादलों पर भागता है चांद

पैर धसकते हैं बार बार
बार बार साधता हूं संतुलन
अंतत: थककर गिर जाता हूं
पृथ्वी पर
पीठ के बल बेदम
ताकता हूं आकाश
तारे हैं वहां चिनचिनाते
आंखें घुमाता हूं चारों तरफ
नहीं दिख् रही पृथ्वी कहीं भी
सगुन आकश है बस सब ओर
शायद
क्षितिज की संधि पर हूं मैं
पीठ के नीचे
फैली है निर्गुन रेत
पृथ्वी का प्रतिनिधि में
उठ बैठता हूं
कोडता हूं रेत
नीचे निकल आता है जल
कुनकुना
चुल्लू में भरता हूं जल
उसमें तिरते हैं तारे
तोरों की पी जाता हूं मैं
ओह
ब्रहमांड फैल रहा है
मेरी अंतडियों में।
1994

महानगर में लड़कियाँ / कुमार मुकुल

दो लडकियां रिक्शे पर हैं

सिर पर पोनीटेल में
टंके हैं सफेद फूल

हल्का अंधेरा है और उन्हें निहारने में
बल पड रहा आंखों पर
लडकियों के दिखने का लहजा सुंदर है
पर रिबन के सफेद फूल
ज्यादा खिल रहे हैं

जा चुका है रिक्शा
सिर टंके फूलों की गंध याद कर रहा हूं
याद कर रहा हूं उनका चेहरा
कि महुए की तीखी गंध डुबो लेती है अपने में
महानगर में अब भी तीखा है महुआ
अब भी सुंदर हैं लडकियां यहां ।
1995

एक शाम थी वह / कुमार मुकुल

डूबते सूरज का
अब कोई दबाव नहीं था
एक तारा था ऊपर
आकाश की अंगुली सा
खेत की मेड थी और था एक कुआं
टीले थे पास कई
और एक पीपल
खडखडाता तिलंगों सा चैत में

कुछ दूर भेंडें थीं ...में ... मां ... करतीं
हरर हो ... करते चरवाहे

मैंने सोचा यही जीवन है

सफेद जुते मैदानों में
अंधेरा उतर रहा था धीरे धीरे ...
जैसे लोरी में उतरती है नींद
फिर रह गया अंधेरा ही
रह गयी हवा
बतलाती कि वह भी है

अब निकलेंगे पतंगे अंधेरे कोटरों से
बिलों से सांप निकलेंगे
दरारों से ऊपर आएंगे बिच्छू
अब अपने बच्चों को खोजती टिटहरी
दौडेगी इधर उधर
चिचियाती खेतों में।
1996

पहाड़ सो रहे हैं / कुमार मुकुल

संध्या हो चुकी है
चांद से झड रही है धूल ... रोशनी की
और पहाड ... सो रहे हैं
सो रही है चिडिया रोशनदान में
ऐसे में बस हरसिंगार जाग रहा है
और बिछा रहा है फूल धरती पर
और सपने जग रहे हैं
छोटी लडकी की आंखों में
स्कूल पोशाक में
मार्च कर रही है वह पूरब की ओर
जिधर सो रहे हैं पहाड ... अंधियाले के
जहां अब उग रहा है भोर का तारा
जिसके पीछे पीछे
आ रही है सवारी सूर्य की
रश्मियों की रागिनी बजाती हुई ।
1994

बहती नदी में चांद / कुमार मुकुल

बहती नदी में
खूब झलफलाता है चांद
जैसे चिडिया नहाती है
सुबह की धूप में
और मछलियां
चांदनी में फंसती हैं इस तरह
कि चली आती हैं दूर तक
और लौट नहीं पाती हैं

चांदनी में
नदी नहाते लोग
लगते हैं सोंस से
और
दूर से आती नाव
घडियाल सा मुंह फाडे
आगे बढती जाती है ।
1996

पीछ-पीछे चांद / कुमार मुकुल

कनारों के रेतीले विस्तार से उभर रही है शाम
और चांद ऊपर है
बहती धारा में परछाई है उसकी उससे भी चमकीली
जिसे बहा नहीं पा रही है धा ... र अंधेरा
इतना नहीं है अभी कि चांदनी का आभास
साफ हो
सांझ का धुधलका लौटा दे रहा है
चांदनी को ऊपर
शाम के साथ थिरा रही है हवा
और नदी अपनी सतह के नीचे बहने लगी है
स्टील की थाली सा चांद चिपका है सतह से
फिर गहराता है अंधेरा और चांदनी
उतरने लगती है ...
उसके साथ मैं भी उतरता हूं
निर्जनता में नदी की
पहला पांव और छप्प ... छप्प
जैसे नदी के वस्त्र खींचे हों मैंने
और गुदगुदाकर हल्के छलकी हो नदी
अपनी सतह के ऊपर
इसी तरह उतरता जाता हूं मैं
कमर कंधे तक गले तक
अपनी निरंतरता में नदी
मुझे नंगा कर रही है पर रोमांच नहीं है
मानो एक अ ह र नि श गोद हो

जरा सा सिर नीचे कर पानी में ठुड्डी को डुबाता
कुल्ला भरता हूं फिर फेंकता हूं स्थिर चांद पर
चूर चूर हो जाता है वह बिखर जाता है
फिर उसकी सारी छवियां एकमएक हो जाती हैं
तब मैं मारता हूं चांटा सतह पर
अब हजार टुकडे हो जाते हैं चोद के
मैं ऐसा करता जाता हूं फिर तैरता हूं आगे

तो पीछे पीछे चांद चलता आता है।
1998

हवा है हवा है और... चांदनी है / कुमार मुकुल

किसी ने अपन चेहरा थोडा सा झुका लिया हो जैसे
सतरहवीं का चांद है यह साफ सुथरे भादों के आकाश में
लग्गी भर की दूरी पर एक सितारा है मुकाबिल
और आस पास दूर तक कोई नहीं है

हवा तेज है खासी ... ठंडी
जैसे दूर कहीं भीगते मैदानों से आ रही हो
मेरी दोहरी सफेद धोती मेरे साये से भागती सी
फड-फडा रही है और कानों में
हवा की मीठी सूं ...सूं गूंज रही है

भीतर मेरे इक शोर सा है
कि दूर जैसे समंदर की लहरें पछाड खा रही हों
माथा पटक रही हों कनारे के पत्थरों पर

हवा है ... हवा है ... और चांदनी है
हवा और चांदनी के दुशाले
मेरे वजूद पर अनवरत फिसल रहे हैं

ग्यारह बजने को हैं और शहर सोने को है
पडोस में कदली के पत्ते चमक रहे हैं
झींगे की लतरें भी

सफेद स्याह मकानों के सामने कोनों-अंतरों में
रोशनी के लट्टू भगजोगनियों से चमक रहे हैं
जहां तहां पानी के चहबच्चे चहक रहे हैं चांदनी में
और रोशन खिडकियों के प्रतिबिंब
हिल रहे हैं पानी में
एक झींगुर बोले जा रहा है पनी में ...
तिक तिक तिक तिक
फिर कहीं दूसरा और तीसरा
जैसे चांदनी का गीत गा रहे हों वो ...
बीच बीच में एक टिटहरी
टिहुक जा रही है कहीं से।
1998

बारिश / कुमार मुकुल

पहले बड़ी-बड़ी छितराती बूंदें गिरीं

और सघन होती गयीं

सामने मैदान में चरती गाय ने

एक बार सिर ऊपर उठाया

फिर चरने लगी

और बछड़ा

बूंदों की दिशा में सिर घुमा

ढाही-सा मारने लगा

और हारकर

आख़िर

गाय से सटकर खड़ा हो गया

एक कुत्ता

पूँछ थोड़ी सीधी किए

करीब-करीब भागा जा रहा है

जैसे बूंदें

उसका जामा भिगो रही हों

बूंदें गिर रही हैं एक तार

पहले

गाय की पीठ भीगकर

चितकाबर हो जाती है

फिर टघरकर पानी

कई लकीरों में

नीचे चूने लगता है

और नक्शा बनने लगता है कई मुल्कों का

लकीरें बढती जाती हैं

और एकमएक होती जाती हैं

नीचे गाय के पेट की ओर

थोड़ी जगह सूखी है

जैसे बकरे की खाल चिपकी हो
अंत में करीब-करीब वह भी
मिटने लगती है

बूंदें एकतार गिर रही हैं

अब कभी-कभी गाय को
अपनी देह फटकारनी पड़ती है
सिर को झिंझोड़ पानी झाड़ना होता है
पर उसका चब्बर-चब्बर चरना जारी रहता है

बूंदें गिर रही हैं एक तार

दो घरेलू और एक पहाड़ी मैना
पोल से सटे तार पर भीग रही हैं
तार की निचली सतह पर
बूंदें दौड़ लगा रही हैं
एक बूंद बनती है
और ढलान की ओर भागती है
और वह दूसरी बूंद से टकरा जाती है
फिर तीसरी बूंद नीचे आ जाती है
बची बूंद दौड़ती है आगे की ओर
यह चलता रहता है

बूंदें गिर रही हैं एकतार

नगर का नया बसता हिस्सा है यह
भूभाग खाली हैं अधिकतर
एक-आध मकान बन रहे हैं
काफी पानी गिरने पर काम बंद हो जाएगा
इसलिए शुरूआती बारिश में काम तेज़ है
सिरों पर बोरियाँ डाले मज़दूर भाग रहे हैं
छाता लिए ठीकेदार ढलाई ढकवा रहा है

नीचे घास मिट्टी की सड़क पर
मारूति में बैठा मालिक
टुकुर-टुकुर ताक रहा है

कभी शीशा जरा-सा खिसका कर
कुछ चिल्लाता है वह ...
तो मज़दूर धड़फड़ाने लगते हैं
पर आख़िरकार बारिश
उसका शीशा बंद करा देती है
और मजूर हथेलियों से
पसीना मिला पानी पोंछते
भागते रहते हैं

बारिश टिक गयी है

सीमेंट बहने लगा है
कम पड़ गया है पालीथीन
ठीकेदार काम रूकवा देता है
मजूर सुस्ताते हुए
आकाश ताकने लगते हैं
डर है कि बारिश
दोपहर बाद का काम
बंद ना करा दे

बूंदें गिरनी जारी हैं

थोड़ी दूर आगे छत पर
अधबने मकान की
बिना चौखट की खिड़की पर
ननद-भौजाई आ बैठी हैं
लगता है खाना बना चुकी हैं वो
और नहाकर ऊपर आई हैं
ननद ने गुलाबी मैक्सी पहन रखी है

और भौजाई भी गुलाबी साड़ी में है

एक-दूसरे पर दोहरी होती

केशों में कंघी कर रही हैं वे

अचानक वे उठकर

सीढियों को भागती हैं

किसी को भूख लग आई होगी

बूंदें गिर रही हैं

जैसे पूरे दृश्य को

किसी ने तीरों से बींध डाला हो

पूरा दृश्य फ्रीज है

बस, चींटियाँ भाग रही हैं

अपना ठिकाना बदल रही हैं वो पंक्ति में

बीच में रानी चीटीं है

पीछे से मोटी-सी

छोटे पंखों वाली कुछ चींटियों ने

अंडे उठा रखे हैं

बीच में कभी कोई कीड़ा आ जाता है

तो पंक्ति टूटती है

और उसे भी साथ लेकर

चल पड़ती हैं वे

फिर

वही पंक्ति

इस कोने से उस कोने

इस जहान से उस जहान।

(रचनाकाल : 1998)

kumarmukul07@gmail.com